© 2019 IJSRST | Volume 6 | Issue 5 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology
DOI : https://doi.org/10.32628/IJSRST

आधुनिक कविता में स्त्रीवादी तेवर: स्वरूप और पहचान

डॉ .नीलम
हिन्दी विभाग, लक्ष्मीबाई कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

साहित्यिक विधाओं में कविता लेखन की अपनी एक विशिष्ट पहचान रही है क्योंकि कविता भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक प्रभावशाली साहित्य रूप है। कतिपय इसीलिए कविता या काव्य हजारों–हजार वर्षों से निरंतर रचनाशीलता का सशक्त माध्यम बनी हुई है। अगर हम आधुनिक समय में देखें तो स्पष्ट पता चलता है कि कविता का जादू अब समाज के वंचित तबकों में भी पहुंच गया है। आधुनिक समय में समाज के वंचित समूहों ने अपनी दमित आवाज को पहले–पहल कविता के माध्यम से ही अभिव्यक्त किया है। स्त्री, दलित इत्यादी वंचित समूहों को इस संदर्भ में बखूबी देखा जा सकता है। कहा जा सकता है कि कविता इन वंचित जन समूहों की एक सशक्त रचनात्मक माध्यम बन कर उभरी है। एक तरीके से यह विशिष्ट जन बनाम वंचित जन की साहित्यिक संघर्ष का परिचायक भी है। मसलन आधुनिक दौर की कवयित्रियों ने अपनी कविताओं द्वारा कविता लेखन के पारंपरिक शास्त्रीय दृष्टिकोण और रूप को अपनी आत्म अनुभूति की अभिव्यक्ति द्वारा नयी अर्थवता प्रदान किया है तथा अपनी व्यथा को खुद लिखकर साहित्य में मौजूद पुरुषवाद को चुनौती पेश किया है। इस तरह कहा जा सकता है कि आधुनिक दौर की स्त्रीवादी कविता में मौजूद स्त्री 'स्व' का कथ्य एक ऐतिहासिक घटना है। मसलन समकालीन कवयित्री विश्वासी एक्का लिखती हैं :–

"धर्म ग्रंथ पुरूषों ने लिखा
स्त्री को नियमों की बेड़ियां पहनाई,
स्त्री रजस्वला हो तो मंदिर में
प्रवेश वर्जित कर दिया।
स्त्री को त्याग देने का अधिकार
सिर्फ पुरूषों को दिया,
यहां तक कि त्याग दी गई स्त्री को
स्वीकारने वाले पुरूष के लिए भी
दंड देने का विधान दिया।
चरित्र शंका का हक़ भी
सिर्फ पुरूषों को दिया,
आश्चर्य है

फिर भी स्त्रियां ही
भगवान की पूजा में रत होती हैं,
व्रत रखती हैं
तमाम विवाह चिन्ह धारण करती हैं,
ईश्वर की आराधना में
समूहगान करती हैं।
पुरूष खुद को मुक्त रखता है
इन फिजूल की बातों से
यह जरूरी भी है
क्योंकि उन्हें
और नये-नये नियम भी तो बनाना है।" (बेड़ियां/विश्वासी एक्का)

विश्वासी एक्का आदिवासी स्त्री स्वर और आदिवासियत की एक प्रमुख कवियत्री हैं जो स्त्री शोषण के प्रश्नों से गुजरते हुए पितृसत्ता, प्रकृति, संस्कृति और समसामयिक घटनाओं को भी बड़ी शिद्दत से अपनी कविताओं में समेटती हुए समकालीन कविता की दुनिया में अपनी रचनात्मक ठसक के साथ एक जबरदस्त प्रभाव डालने में सफल होती हैं। विश्वासी एक्का की कविताएं न मौसमी हैं और न फैशनेबल हैं। इनकी कविताएं हर स्तर पर कुछ खोज रही होती हैं। यह खोजी प्रवृत्ति ही जीवंत मनुष्य की पहचान है।

विश्वासी की तरह ही लगभग सभी स्त्रीवादी कविताएं क्षणिकता से शुरू होकर गहरे चिंतन-मनन की परिधि को लांघकर युगों-युगों की सभ्यता,संस्कृति और बौद्धिक परिवेश को आत्मसात करते हुए, जन्म लेती हैं। मन-मस्तिष्क और सामाजिक परिवेश के आंतरिक और बाह्य संघर्ष के बावजूद विश्वासी की कविताएं अपनी निजता और स्वतन्त्रता को पूरे आत्मविश्वास के साथ बनाए रखने के क्रम में न सिर्फ सफल ही होती हैं बल्कि सम्पूर्ण स्त्री समाज की पक्षधर बन जाती हैं ।कविता की दुनिया में एक परिचित किंतु अनछुए संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की दुनिया और परिवेश से रागात्मक संबंध भी स्थापित करना है। रचनात्मकता के इसी भावबोध को केन्द्र में रखते हुए विश्वासी एक्का की कविताएं विकसित होती हैं।

स्त्री शिक्षा के सवाल से आज भी बहुत से पुरूष कतराते हैं उनकी नज़र में स्त्री महज बलात संभोग का जरिया और सांस्कृतिक तौर पर मुफ्त की नौकर है। ऐसे में वह पढ़-लिख कर चेतना सम्पन्न हो जाए तो वह स्वाभिमानी हो जाएगी और उससे जबरदस्ती करना मुश्किल हो जाएगा। तभी तो अधिकांश पुरूष कहते हैं लड़कियों को ज्यादा पढ़ाना बेकार है क्योंकि अंत में तो उन्हें चूल्हा-चौका ही करना है। इस पितृसत्तात्मक सोच की अनेक स्त्री कवयित्रियों ने धज्जियाँ उड़ाई हैं।

वैसे भी मानवीय समाज निरंतर किसी न किसी त्रासदी से जूझता रहा है।फिर ऐसे में वर्ष 2020 से शुरू हुई कोरोना महामारी ने वर्तमान और भविष्य के प्रति अनिश्चितता का महौल बना दिया है।दुनियाभर से ऐसी अनेक खबरें आई कि महामारी के इस दौर में स्त्री उत्पीड़न और यौन हिंसा जमकर किया गया। जिस पर अनेक कविताएं लिखी गईं। वस्तुत: स्त्री उत्पीड़न और भोग की यह आदिम प्रवृति आज भी जारी है जो सभ्य समाज की जादुई परिकल्पना पर प्रश्न चिह्न लगाता है। वास्तव में स्त्रीवादी कविता को पर्याप्त धैर्य और खुले दृष्टिकोण से समझने की जरूरत है।

इस सृष्टि के सर्जनात्मक स्वरूप में स्त्री–पुरुष दोनों की समान सहभागिता रही है लेकिन अगर आज 21वीं सदी की दहलीज से देखें तो हमें एक ऐसे समाज का चित्र दिखाई देता है, जिसमें स्त्री सदियों से जकड़ी हुई है। अनादि काल से भेदभाव की शिकार स्त्री ने आज स्वयं ही अपने प्रश्नों व समस्याओं को समाज से पूछना आरंभ कर दिया है। यह प्रश्न हैं– उसकी अस्मिता उसकी आकांक्षाओं व उसकी मुक्ति से जुड़े हुए जिनके कारण समकालीन कविता में हमें स्त्री चेतना के विविध पहलुओं के दर्शन होते हैं। समकालीन साहित्य में स्त्री शोषण स्त्री मुक्ति, स्त्री अस्मिता, स्त्री चेतना, अस्तित्व तथा यौनिकता आदि पर कवित्रियों ने विभिन्न रूप में अपनी आवाज उठाई है।

'स्त्री हो, कम बोलना,
कम काटना बात औरों की
मत उलझना,
मत हंसना पेट पकड़,
चुप–चुप गुजर जाना
उन शान–मेले से
स्त्री हो।' (पद्मा सचदेव)

इन पंक्तियों से हम समझ सकते हैं कि स्त्री को लेकर पुरुषसत्तात्मक सोच क्या है? इसका पर्दाफाश इस कविता के माध्यम से होता है। जब हम चारों तरफ देखते हैं तो पता चलता है कि स्त्रियां जहां बंधनों में बंधी हुई हैं, वहीं पुरुष स्वतंत्र उन्मुक्त आकाश में अपना फरमान जारी कर रहा है, लेकिन मैं इतना जरुर कहना चाहूंगी कि 21वीं सदी के सफर में आज स्त्रियां अपने वजूद को लेकर जागृत होने की कोशिश कर रही है तथा अपने अधिकारों, अपनी अस्मिता, अस्तित्व आदि को लेकर आंदोलनरत हैं।

'तुम क्या जानते हो एक स्त्री के बारे में
रसोई और बिस्तर के गणित के परे
तुम क्या जानते हो एक स्त्री के बारे में।'(निर्मला पुतुल)

आज सृष्टि की आधारशीला नारी जब शिक्षित होकर अपने अधिकारों, अस्मिता और अस्तित्व के लिए जाग उठी है तब उनकी आवाज पूरी सृष्टि में सुनाई देने लगी है। इन्हीं आवाजों को पाकिस्तान की लेखिका शाइस्ता हबीब की पंक्तियों में देखा जा सकता है।

'पत्थर से आवाज कभी भी दब नहीं सकती
रोशनी अंधेरों से कभी डर नहीं सकती
जंजीरों से फूल की खुशबू छुप नहीं सकती
जेहन गुलाम हैं अगर कौम उभर नहीं सकती।' (शाईस्ता हबीब)

हम देखते हैं कि यदि सृष्टि की आधारशिला नारी का जेहन यदि गुलाम है तो कोई भी देश समाज कभी तरक्की नहीं कर सकता है। यह बात हम देख सकते हैं कि एक स्त्री की लेखनी में उनकी आवाज किस प्रकार से गूंज रही है।

भारतीय संस्कृति के विषय में बड़ी ही प्रसिद्ध उक्ति है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं । किंतु वास्तविकता इसके उलट है क्योंकि प्राचीन काल से लेकर आज तक स्त्रियाँ सांस्कृतिक रूप से गुलाम बना कर रखी गई हैं और बिना सांस्कृतिक स्वतंत्रता के स्त्री मुक्ति की बात करना बेईमानी है, एक प्रपंच है। लेकिन अब इस प्रपंच और छलावे को आधुनिक शिक्षित स्त्री समझ गई है।

यह भी कड़वा सच है कि बोलने वाली स्त्री कभी भी पुरुष प्रधान समाज के गले नहीं उतरी। बचपन में ही छोटी उम्र की लड़कियों का ब्याह करके माता-पिता अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाना चाहते हैं। समाज की इसी विडंबना का खुलासा सविता सिंह अपनी कविता 'विमला की यात्रा' में करती हुई कहती हैं-

बारह साल की उम्र में
विमला ब्याह दी गई
जब वह गई पति के घर पहली बार
उस घर को उसने बनाया अपना
लीप-पोत कर चमकाया उसे
कूट-पीस कर हमेशा इकट्ठा किया और रखा
साल भर का अनाज
धोए उसके पांव
सिले सबके उधड़े-फटे कपड़े
कहते हैं पति का घर होता है पत्नी का घर।' (सविता सिंह)

पुरुष समाज में स्त्री की स्थिति का वर्णन करते हुए कवयित्री आगे कहती है:-

'पति की मृत्यु के बाद औरत का जैसे संसार बदलता है
.....पति की मृत्यु के बाद
आज शाम चार बजे
विमला जा रही है अपने पिता के संग।' (सविता सिंह)

इस कविता के माध्यम से हम देखते हैं कि हमारे समाज में स्त्री की स्थिति कितनी दयनीय है। जिस घर को वह अपना कहती है दरअसल पति के न रहने पर उस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहता है। जब तक पति की सत्ता है तब तक उसकी सत्ता। पति के चले जाने के बाद उसकी सत्ता समाप्त कर दी जाती है। कानूनन तो उसको सारी सत्ता मिली हुई है, लेकिन क्या समाज स्त्री को उसका हक देने के लिए तैयार है? नहीं! स्त्रियों को हमारा पुरुष समाज केवल खिलौना या कठपुतली समझता है। उसकी इच्छा, अनिच्छा का कोई मतलब नहीं। इच्छाएं तो स्त्री के मन में पनपती कहां है। उनका तो कार्य सिर्फ जिम्मेदारियों का वहन करना है। तभी तो सुविख्यात चिंतक जे.एस. मिल. कहते हैं 'पुरुष को एक ऐसे गुलाम की जरूरत थी जो स्वेच्छा से अपनी गुलामी स्वीकार कर सके और वह थी स्त्री'। बिल्कुल सच कहा है जे.एस. मिल.ने। आज भी हमारे समाज की औरतें घर के कामकाज को इस तरह से निपटाती हैं कि जैसे लगता है की सारी जिम्मेदारियों का वहन इनके ही कंधों पर है। इस कड़वे सच को हम इस कविता के माध्यम से हम देख सकते हैं : -

'बहुत सुबह जाग जाती हैं मेरे शहर की औरतें
वे जगी रहती हैं नींद में भी
नींद में ही वे करती हैं प्यार, घृणा और संभोग
.....
उनके हाथ मजदूरों की तरह काम करते हैं
बनी रहती हैं फिर भी अभिजात संभ्रांत
वे नाश्ता बनाती हैं सुबह–सुबह
भेजती हैं मर्दों को दफ्तर
बच्चों को स्कूल
फिर भी बंध जाती हैं पालतू–सी
सुखी–दुखी अपने घरों से
डरी रहती है बिस्तर में भी अपने पुरुषों के संग
बेवजह खलल नहीं डालती उनकी नींद में।' (अनामिका)

लेकिन फिर भी हमारे समाज में कुछ चेतना आयी है। पहले स्त्री को सिर्फ देवी बना दिया गया था। उसकी पहचान को धर्म और ईश्वर आदि के माध्यम से रेखांकित किया जाता था, लेकिन आज की चेतनशील स्त्री अपनी पहचान सिर्फ एक आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में देखना चाहती हैं। इसी कड़ी में रूसी कवयित्री की कुछ पंक्तियां दृष्टव्य है–

'हे राम मेरे
औरत को चाहिए
कितना कम बस इतना ही
कि उसे औरत माने हम।' (येत्गेनी येकुशेंको)

यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण ना होगा कि स्त्री–चेतना बांसुरी का वह सुर है जो सदियों से गंगा था। हमारी सामाजिक चेतना ने आज उसे राग और सुर देकर नए रूप में सजाया है। यही वजह है कि स्त्री–मुक्ति आंदोलन, स्त्री–चेतना, अस्मिता, अस्तित्व एवं स्त्री–विमर्श जैसा तरन्नुम हम अपने आस–पास महसूस करते हैं। आज स्त्री पुरुष समाज से प्रश्न करती है? अपने स्वतंत्र होने की बिगुल बजाती है और कहती है:–

'कितने क्रूर है वे लोग
जो आगे बढ़ती स्त्री को
गोबर पत्थर लाठी डंडे
कोड़ों से मार रहे हैं
पर सुनो गिद्धों

तुम्हारे कहर के बावजूद चिड़िया
जरुर उड़ेगी
और हर बार उसकी उड़ान
पहली उड़ान से ऊंची होगी।' (अनिता भारती)

यदि हम चारों तरफ देखते हैं तो बात स्पष्ट होती है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जहां एक तरफ स्त्री जड़ पत्थर होकर पूज्यनीय हो गई है वहीं वह बाजार की वस्तु भी बना दी गई है इसी वस्तुकरण का विरोध साहिर लुधियानवी के इन पंक्तियों में है :-

'औरत ने जनम दिया मर्दों को
मरर्दों ने उसे बाजार दिया
जब भी चाहा मसला कुचला
जब भी चाहा दुत्कार दिया।' (साहिर लुधियानवी)

कवि आगे स्त्री की स्थिति का बयान करते हुए कहता है कि रीति रिवाज मर्दों ने अपने लिए बनाया है। उसने अपने भोग-विलास और स्वतंत्रता के लिए स्त्रियों को रीति रिवाज की बेड़ियों से बांध दिया है, जिससे वह कभी मुक्त ही न हो पाये और वह स्वतंत्र होकर पूरे आकाश में विचरण करता फिरे।

'मर्दों ने बनाई जो रस्में उनको हक का फरमान कहा
औरतों के जिंदा जलने को कुर्बानी और बलिदान कहा
इस्मत के बदले रोटी दी और उनको भी एहसान कहा'

आधुनिक स्त्री चेतना आज संपन्न है, मर्दवादी सोच द्वारा लागू किए गए सभी सिद्धांत उसने खारिज कर दिया है। यहां तक की यौन शुचिता का हौवा उसे डरा पाने में असमर्थ है। देवत्व की परिभाषा को उसने नकार दिया है और दुनिया को अपने ही दृष्टिकोण से देखना आरंभ कर दिया है। इसी आधुनिकता बोध के फलस्वरुप वह मूकदर्शी और संयमी नहीं रह गई है। युगों-युगों से दमित और दलित स्त्री अवसर पाते ही बोल पड़ी है। शोषण को वह ज्यादा समय तक सह पाने में असमर्थ है। वह बेबाक बयानी करती है और यौन शुचिता, पवित्र कोख और अनछुई योनी को पुरुष समाज द्वारा गढ़ा गया गहरा षडयंत्र मानती हैं, जो सीता-सावित्री के 'आदर्श मिथ' को गढ़ कर उसके बढ़ते हुए कदमों को बांध लेना चाहता है, लेकिन आज की स्त्री उन्मुक्त होकर कहती है :-

'गूंजती है आवाज सब दिशाओं में
मुझे अनंत असीम दिगंत चाहिए
छत का खुला आसमान नहीं
आसमान की खुली छत चाहिए
मुझे अनंत आसमान चाहिए।' (सुशिला टाकभौरे)

लेकिन यह भी सुकून की बात है कि अब स्त्रीवादी स्वर अपनी अस्मिता के साथ अपनी चेतना को सफलतापूर्वक व्यक्त कर रहा है जो एक नये युग की शुरुआत का संकेत है। सुविख्यात कवयित्री रजनी तिलक अपनी कविता 'करोड़ों पदचाप हूं ' में लिखती हैं:-

'मेरा दुख
दुख नहीं
आशाओं का तूफान है
मेरे आंसू, आंसू नहीं हैं
जंग का पैगाम हैं।
इकाई नहीं मैं
करोड़ों पदचाप हूं,
मूक नहीं मैं
आधी दुनिया की आवाज हूं
नए युग की सूत्रधार हूं।'

वस्तुत: रजनी तिलक की इस स्त्रीवादी कविता में स्त्री स्वतंत्रा और उसके अस्तित्व का दर्शन स्वत: देखा जा सकता है जो सम्पूर्ण स्त्री मुक्ति का उदघोष प्रतीत होता है।

स्त्रीवादी कविताओं के आलोक में कहा जा सकता है कि इन कविताओं में कहीं पूंजीवाद का खुला तांडव है तो कहीं अभावों में दम तोड़ रही ज़िंदगियों की दास्तान है। कहीं दाम्पत्य जीवन की सुनहरी-मनोहारी छठा है तो कहीं पितृसत्तात्मक दाम्पत्य जीवन में पुरूष अधिनायकत्व के शिकंजे में जकड़ी स्त्री की छटपटाहट है। वास्तव में स्त्रीवादी कविताएं स्त्री चेतना में सराबोर होते हुए भी वृहत्तर समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं की तह में जाकर 'जीवन' को उकेरती हैं। यही उनकी कविताओं का बड़ा फलक है। वस्तुत: उदासी भरे माहौल में मानवीय संवेदनाओं की त्रासद और सुखद स्थितियों को बड़ी शिद्दत और कलात्मकता से अभिव्यक्त करने के फलस्वरूप आधुनिक सत्रीवादी कविताएँ साहित्यिक-सामाजिक दृष्टिकोण से प्रासंगिक बन जाती हैं। यही इनकी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्तित्व की पहचान है। अब स्त्रीवाद और उसका साहित्य लेखन की नई चुनौतियाँ पेश करते हुए पुरुष वर्चस्व और उसकी बर्बरता के खिलाफ एकजुट होकर समतामूलक समाज की संवैधानिक संकल्पना के लिए संघर्ष कर रहा है। वस्तुत: आधुनिक स्त्रीवाद जितना आक्रामक और बागी है उतना ही मानवीय और संजीदा भी है। आधुनिक स्त्रीवादी लेखन और विशेषकर इक्कीसवीं सदी की स्त्रीवादी कविताएँ इस तथ्य का सशक्त प्रमाण हैं।